□□□□□□ □□□□□□□ □□□□□□□ □□ □□□□□□ :□□□□ □□ □□□□□□□ □□ □□□□□□□

(Development of Hindi print media: language and gender perspective)

Dr. Durga Prasad Singh

□□□□□□ □□ □□□□□ □□ □□□□□□□□□□ □□ □□□□□□□□□□□ □□□□ आम □□□□□ □□ □□□□□□ □□□□□ □□□□□ □□□□ □□□□□□□□□□□□□ □□□□□□ □□□□ □□ | □□□□□□ और □□□□□□ □□ असर □□□□□□□□□ और □□□□□ □□□□□ □□ | इन □□□□□□□□□ □□ □□□□□□□□ □□□□ □□□□□□□ □□□□□□□□-□□□□□□□ □□□□ □□ □□□□□□ □□□□ □□ | यह □□□□□□□ □□□□□□ □□□□□□□-□□□□□□□ □□ □□□□□□□ □□ □□□□□□□□□□□□□□ □□□□□ □□□□ □□□□ □□□□□□□□□□□ □□ समझ□□ □□ □□□□□□□ भाषा और समाज के रिश्ते को समझने के लिए जरूरी है कि हम यह भी समझे कि भाषा के विभिन्न माध्यमों मसलन प्रिन्ट-मीडिया की भाषा के प्रति आम लोगों की धारणा क्या है। भाषा के मानकीकरण में प्रिन्ट-मीडिया का ऐतिहासिक योगदान रहा है। भाषा की निर्मिति तो हमेशा समाज में होती है लेकिन प्रिन्ट-मीडिया हमेशा मानकीकरण की केन्द्रीय भूमिका निभा रहा होता है। दोनो के आपसी सम्बन्धों की सरल अभिव्यक्ति इन शब्दों में की जा सकती है कि छपे माध्यम का पाठक हमेशा अनुकरण करता है। अनुकरण की इस प्रक्रिया में सामाजिक डोमेन के संश्लिष्ट प्रभाव भाषा को अनेक स्तरों पर प्रभावित करते । भाषा में लैगिक-पूर्वग्रह उसी का एक परिणाम है । माषिकी के सिद्धान्त यही कहते है कि भाषा और समाज को उसकी बहुआयामी जटिलता से ही समझा जा सकता है। पाठकीय अभिग्रहण या (Readers perception) इन्ही आयामों में से एक है।

पाठक हमेशा परम्परा से प्रभावित होते रहे है मुद्रित माध्यम भाषा के मानकीकरण में भी भूमिका निभाते है। लेकिन यहां स्मरणीय है कि पाठक भी लिखने वाले को प्रभावित करता है। पाठक-लेखक का रिश्ता पिछले 150 वर्षो के दौरान निर्णायक रूप से बदला है। बदलाव की इस प्रक्रिया को समझने की आवश्यकता है। हिन्दी रिनेसाँ के दौर में जो मुद्दे भारतीय जन मानस में उभर कर आए उनका सरोकार समाज-सुधार से था। बंगाल के नवजागरण की हवा हिन्दी क्षेत्र में आयी तो स्त्री-शिक्षा, विधवा-पुर्नविवाह धार्मिक सुधार एवं सती प्रथा के औचित्य-अनौचित्य पर विमर्श होता रहा। जनमानस भी इन्ही प्रकार के लेखन से प्रभावित होता रहा लेकिन इसके समानान्तर तिलिस्म-ऐयारी जैसे विषयों पर भी लेखन होता रहा जो हिन्दी लोक में काफी लोकप्रिय था। यह महत्वपूण शोध का विषय है कि इन दोनों तरह के लेखन में स्त्री की कैसी छवि निर्मित हो रही थी। इसी छवि की खोज से लेखक-पाठक और बाजार के संबंधो को समझा जा सकता है। बीसवी सदी के आरम्भ में जैसे-जैसे उपनिवेश विरोधी चेतना का प्रसार होने लगा वैसे-वैसे हिन्दी प्रिन्ट-मीडिया के चरित्र में बदलाव आने लगा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में स्वतंत्रता के प्रति न सिर्फ नजरिए में बदलाव आया बल्कि उसका असर भाषा पर भी पड़ता गया। लेकिन बाजार का चरित्र ऐसा होता है कि वह हल्के-फुल्के मनोरंजन की मांग बढ़ा देता और ऐसा स्त्रियों के प्रति प्रगतिशील नजरिए से सम्भव नही है क्योंकि बाजार का महत्वपूर्ण पक्ष उपभोक्ता है जो कि प्रायः पुरुष होता है, दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब बाजार और मनोरंजन एक हो जाते है तब रीतिकाल जैसा लेखन ही सम्भव होता है और ऐसे लेखन में वहॉ के समाज की समूची तस्वीर दिखे ये जरूरी नही।

इन चिट्ठियों या अर्ध कल्पित, अर्ध-असली कहानियों द्वारा वे पाठकों को अपील करती हुई नजर आती है।तत्कालीन पत्रिकाओं में छपे शीर्षक जैसे "मै पतित कैसे हुई" की विशेषता यह थी कि उसमें पाठक को सीधे सम्बोधित करके उससे सहानुभूमि या एकात्म की मांग की जाती थी। स्त्रियों के सवाल से सम्बन्धित ढेरों लेखों में "आप मेरी जगह होती तो क्या करती?" जैसे सवाल सशक्त और कारगर साबित हुए'[1] इन अखबारों के पत्र के कॉलम में अनाम स्त्रियों के लिए 'एक दुखिनी' जैसे विशेषण देखने की मिलते थे, जिसे पितृसत्तामकता के भाषा विस्तार के सिवाय क्या कहा जा सकता है

हिन्दी प्रिन्ट-मीडिया मे पाठक-लेखक सम्बन्ध को समझने के लिए बाजार को समझना जरूरी है। जैसे- जैसे बाजार का विस्तार होता है वैसे-वैसे इन जन माध्यमों द्वारा जनता को शिक्षित करने का सिद्धान्त फीका पड़ता जाता है। इसकी परिणति यह होती है कि लोकप्रिय और सनसनी पैदा करने वाली खबरों को ज्यादा जगह मिलती जाती है। 1980 के बाद जब हिन्दी प्रिन्ट-मीडिया में दैनिक अखबारों के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई तो राष्ट्रीय दैनिको की लोकप्रियता में कमी आने लगी और विकेन्द्रीकृत क्षेत्रीय अखबारों की पहुंच छोटे शहरों से छोटे कस्बों में पहुच गयी । विकेन्द्रीकरण के इस दौर में जब छोटे शहरों से अखबार निकलने लगे तो स्थानीय भाषा के प्रभाव और प्रबृत्ति बढ़ती गयी । नवे दशक से हिंदी समाचार पत्रों का जो विस्तार शुरू हुआ उसकी प्रमुख वजह व्यावसायिक थी । इसलिए इन समाचार पत्रों में भाषा को लेकर कोई सोच या नीति नहीं थी ,परिणामस्वरूप भाषा के स्टार पर लैंगिक पूर्वग्रह की अभिवक्ति उसके स्वाभाविक परिणामों में से एक थी ।

□□□□-□□□□ □□□□□□□□□□ □□ □□□□□□□□ □□□□ □□ □□□□□□□□□□□□ □□□□□ □□ □□ □□ □□□□□□□□-□□□□□□□ □□ □□□□□□□ □□□□ □□ □□□□□ □□□□□ □□ □□□□ □□□□□□□ □□ □□□□□□□□ □□□□ □□□□ □□□□□ □□ □□□□ □□□□□ □□ □□□□□□□□ □□□□□□□ □□□□□□□□ □□ 1970 □□ □□□□□ □□ □□□□□□□□□□□□ □□□□□□□□ □□ □□ □□□□□ □□□□ □□□□□□ □□□□□ □□□□□□□□ □□□□□□ □□ □□ □□ □□□□□□□ □□□□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□□ □□□□□ □□□□□□□-विमर्श □□ □□□□□□□ □□□□□□□ □□□□□□ □□□□ □□□□ □□□□ □□□□□□ □□ □□□□ □□ □□□□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□ □□□□□ □□ । यही कारण है कि □□□□□□□□□ □□□□□□□ □□ □□ □□□□□□□□ □□□□□ □□□□-□□□□□ □□□□□□□ □□ता □□□□ □ □□□□□□ □□□□□ □□□□□□□ 1970 □□ □□□□□ □□□□□□□ □□□□□□ □□ □□□□□□□□□□ □□ □□□□□ □□□□ □□□□□□ □□□□□□□□ □□□□ □□□□□□□□□ □□ □□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□□□□ □□□□□ □□□□□ □□□□ । □□□□□□□ □□ □□□□□□□□□ □□□□□ □□ □□□□□ □□□□□□ □□ □□□□□□□ □□□□□□□□-□□□□□□□ □□ □□□□□□□□□ □□ □□□□□ □□ □□□□□□ □□□□□□ □□□□ □□□□□ । □□ □□□□□ □□ □□□□□ □□□□ □□□□□□□□□ □□□□ □□□□ □□□□□□□□□□ □□□□□ □□□□□□□□□□ □□ □□□□ □□□□□ □□□□□□□ □□ □□□□□□□□□□ □□-□□ □□□□

<u>हिन्दी प्रिन्ट-मीडिया और भाषा का प्रश्न</u>

भारत में छापेखाने की स्थापना के साथ पाठकों की संख्या लगातार बढ़ती रही लेकिन इस प्रक्रिया को इतने सरलीकृत ढंग से देखने से इसकी अन्तर्निहित जटिलताएं नही समझी जा सकती। उपनिवेश काल में जब पाठक संख्या अत्यन्त सीमित थी तो पाठक-मंचो के माध्यम से इनका सामूहिक वाचन हुआ करता था जिसे शहरी मध्यवर्ग का एक तबका बढ़े ध्यान से सुनता था और प्रभावित होता । यह प्रभाव कन्टेन्ट और फार्म दोनों स्तर पर होता था। आज जब इलेक्ट्रानिक मीडिया का वर्चस्व स्थापित हो चुका है तब प्रिन्ट-मीडिया के प्रभाव को उसी तरह से नही देखा जा सकता। 1920 के आसपास जब गांधी के नेतृत्व में आजादी या उपनिवेश विरोधी आन्दोलन में तेजी आती तब पत्रिकाओं की संख्या के साथ उनकी प्रसार संख्या भी बढ़ने लगी। "बदलते राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के मद्देनजर पत्रिकाओं का विस्तार तेजी से बढ़ा 1921 के आते-आते गांधी के असहयोग आन्दोलन और खिलाफत आन्दोलन का प्रभाव इतना जबर्दस्त था कि मात्र संयुक्त प्रान्त में जहां 1918 में पत्रों की संख्या 18 थी वह 1921 में बढकर 93 हो गयी और उनकी प्रसार संख्या 24000 से बढकर 82000 हो गयी[2] । वैसे प्रदेश की साढे चार करोड जनसंख्या के मुकाबले यह संख्या बहुत कम थी दूसरी तरफ 1921 तक पत्रिकाओं का विस्तार इतना हो चुका था कि केवल यूपी में इनकी संख्या बढ़कर 525 हो चुकी थी और 1927 आते आते इनकी संख्या 641 हो गयी थी। इनमें से 17 दैनिक थे। निम्न सारणीयों के माध्यम से प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के सामाजिक प्रसार और प्रभाव को आंका जा सकता है[3] -

<u>1927 में संयुक्त प्रान्त में पत्र पत्रिकों की प्रचार संख्या</u>

1	दैनिक	17
2	साप्ताहिक	197
3	मासिक	284
4	अनिश्तकालीन	143
	योग	641

(श्रोत: राबिन जेफ्री, भारत की समचार पत्र क्रान्ति, भारतीय जन सचार संस्थान, नयी दिल्ली)

1927 में भाषावार पत्र-पत्रिकाओं की संख्या (संयुक्त प्रान्त)

	हिन्दी	265
	अंग्रेजी	89
	उर्दू	82
	अन्य भाषा	205
	योग	641

(श्रोत: राबिन जेफ्री, भारत की समचार पत्र क्रान्ति, भारतीय जन सचार संस्थान, नयी दिल्ली)

इस दौर में हिन्दी पत्र पत्रिकाओं की प्रसार सख्या के सन्दर्भ में एक खास बात यह भी थी कि इन दिनों समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के लिए पाठक और श्रोता मंच हुआ करते थे ,जिनमे समाचार पत्रों का वाचन हुआ करता था और श्रोता इसकी चर्चा सार्वजनिक दुनिया में करते थे, तब इसके प्रसार और प्रभाव का विवेचन किया जा सकता है। ।ये मंच सूचना और समाचार का मंच मात्र न होकर सांस्कृतिक मंच की भूमिका निभाया करते थे । इन मंचों ने आजादी के आंदोलन के दौर में जनमत बनाने का महत्वपूर्ण काम किया ।

1923 में पत्रिकाओं की प्रसार संख्या

1.	प्रताप	14000
2.	माधुरी	6000
3.	प्रभा	3000
4.	अम्युदय	4000

1.	अभ्युदय	4000

2.	चाँद	3000
3.	माधुरी	2000
4.	माया	5000
5.	प्रताप	7000
6.	सरस्वती	5000

(श्रोत: राबिन जेफ्री, क्रान्ति, भारतीय जन भारत की समचार पत्र सचार संस्थान, नयी दिल्ली)

1940 में आते-आते लगी और प्रदेश में पत्रिकाओं की प्रसार अंदाजा लगाया जा स्थिति बदलने में ही 14 प्रमुख को देख इसका सकता है।

(श्रोत: राबिन जेफ्री, भारत की समचार पत्र क्रान्ति, भारतीय जन सचार संस्थान, नयी दिल्ली)

तीसरे दशक के इन आकड़ों को इस सन्दर्भ में विचार करने की आवश्यकता है कि उस दौर में साक्षरता और शिक्षा का स्तर अत्यन्त निम्न था और पत्रकारिता को एक मिशन माना जाता था। इस मिशन में नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारी का भाव अन्तर्निहित था। महावीर प्रसाद दिवेदी ने 150/- रू की मासिक वेतन वाली नौकरी छोड़ कर 20 रु. के मासिक वेतन वाली सरस्वती का संपादन इसी सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण स्वीकार की। ''जब हम इन पत्रिकाओ को तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों से जोड़कर देखते है तो तत्कालीन प्रिंट मीडिया का परिदृश्य और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। विभिन्न तरह के उद्देश्यों से प्रेरित तत्कालीन बहसों को इन पत्रिकाओं □□ ठोस रूप दिया''[4] । इससे सम्पादकों और लेखकों को जल्दी ही अकादमिक संस्थानों स्कूलो महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में विशेषज्ञ की पहचान बना रहे लोगों से चुनौती मिली। इसके अतिरिक्त जागरूक पाठकों का भी एक वर्ग था जो इन पत्रिकाओं से जुड गया था। पत्रिकाओं में छप रहे विमर्शो ने तत्कालीन लोक परिदृश्य को बदलने का महत्वपूर्ण कार्य किया। तत्कालीन पत्रिकाए पश्चिम के ज्ञान और विमर्श को जिस तरह से पाठको के सामने रख रही थी उसने 'हिन्दी जगत' को बतौर एक विचार और शक्ल अख्तियार करने में मदद दी। इन विचारों की अभिव्यक्ति के लिए खड़ी बोली हिन्दी भी एक आकार ग्रहण कर रही थी क्योकि, यह एक नयी भाषा थी जिसका इतिहास मात्र सौ साल पुराना था। भाषा के प्रश्न को सरस्वती के उन प्रयासों के सन्दर्भ में देखने की जरूरत है जिसका मिशन था 'भाषा का परिमार्जन'। लेकिन हम जानते है कि भाषा तो विचारों के माध्यम है इस दौर में एक स्तर पर भाषा को लेकर सजगता है तो दूसरे स्तर पर वही भाषा, सामाजिक-सांस्कृतिक मूलों को भी अभिव्यक्त कर रही होती है । यहां मुद्दा विचारणीय है कि जब पाठक संख्या का प्रसार होता है तो भाषा के स्तर पर कौन से परिवर्तन आते हैं और इसका पाठको से जुड़ाव कैसा होता है। दिवेदी जी भाषा को लेकर अकसर 'सरस्वती' में अपने विचार प्रकट करते थे, लोगों को ज्ञान देने और सूचनाओं को सहजता से सम्प्रेषित होने के लिए भाषा की सहजता को स्वीकार करने के बावजूद उनका प्यूरिटन आग्रह बरकरार रहा जिस पर विचार करते हुए फ्रेंचेस्का और अन्य का मानना है कि इस तत्सम-बहुल आग्रह ने हिन्दुस्तानी की जीवन्त परम्परा को बाधित किया और हिन्दी के रूप में ऐसी भाषा का रूप सामने आया जो आमजन के भावो के करीब नही थी।[5]

आजादी के आन्दोलन के दौरान मिशन के तहत प्रसार और पाठक संख्या बढ़ी क्योंकि तब देश की आजादी और उपनिवेश से मुक्ति पत्रकारिता की केंद्रीय चिन्ता थी। आजादी के बाद पत्रकारिता को लेकर मिशन और विचार की भूमिका लगातार घटती गयी। क्योंकि आजादी जैसे मुद्दे के न होने के अलावा देश से, अपेक्षाओं का मोहभंग शुरू हो गया था। तमिल, मलयालम, बाग्ला, मराठी में दो तरह की पाठक धाराएं दिखती है एक मनोरंजन-केन्द्रित और दूसरी विचार और मिशन-केन्द्रित जहां पत्रकारिता एक सामाजिक मिशन थी । विचारों को प्रभावित करने वाले वर्चस्वकारी कारको में बाजार बढ़ती भूमिका उल्लेखनीय है। बाजार प्रायः मनोरंजक प्रबृत्ति का पीछा करता है। इन दोनों प्रबृत्तियों का परिणाम यह होता है कि मनोरंजन और तत्कालीन आवश्यकताएं केन्द्र में आ जाती है। इन दो धारणाओ के आधार पर प्रिन्ट-मीडिया के पिछले तीन दशको का विवेचन करने की आवश्यकता है। इन्हीं सन्दर्भो में प्रिन्ट-मीडिया के भाषा के चरित्र का विवेचन लाजमी होगा। भारत में प्रिन्ट-मीडिया के क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण का विवेचन करते हुए सेलिंग हैरिसन ने लिखा कि ''भारत में क्षेत्रीय सम्रांन्तों का संघीय जनतन्त्र मजबूत हो रहा है जो स्थानीय भाषाओं को उछाल रहे है और अलग तरह के राष्ट्रवादों की वकालत कर रहे है। भारतीय भाषाओं के अखबार के फलने-फूलने से क्षेत्रीय संस्कृतियों का भाषाई मानक स्थापित होगा जिसके द्वारा वे सभी सामाजिक स्तरों तक पहुंच सकेंगे और संकीर्ण राजनीतिक प्रबृत्तियों का जन्म तेजी से होगा। इस संकीर्ण राष्ट्रवाद को क्षेत्रीय भाषा के अखबारों में लिखे सम्पादकीय लेखों से बल मिलेगा।[6]

क्षेत्रीय भाषाओं में उपज रही क्षेत्रीयता की तर्ज पर हिन्दी की क्षेत्रीयता का भी विस्तार हो रहा था। नागपुर, पटना, इन्दौर, इलाहाबाद, भोपाल, जयपुर, चण्डीगढ़, कानपुर जैसे प्रमुख केन्द्रों से हिन्दी के क्षेत्रीय अखबारों ने हिन्दी के राष्ट्रीय अखबारों की जगह लेनी शुरू की। हिन्दी में यह प्रबृत्ति थोड़े अलग ढंग से आयी क्योंकि हिन्दी की क्षेत्रीयता की चेतना उतनी प्रबल नही थी यहाँ स्थानीयता का तत्व ज्यादा प्रबल था। इस 'स्थानीयता' के कारक ने हिन्दी प्रिन्ट-मीडिया के प्रसार व भाषा को कैसे प्रभावित किया यह देखना न सिर्फ रोचक होगा बल्कि इस अध्ययन के लिए भी प्रासंगिक होगा। □□□□□□ □□□□ □□□□□, □□□□ और □□□ तरह □□□□□□□ □□□ इन □□□□□□ □□ तह □□□ □□□□ पर □□□□□□□□□□ और □□□□□□□ □□ □□□ □□ □□□□□□ उभरकर □□□□□ □□□ □□ □□□□□ □□□ □□ □□□□□ तक □□□□□□ □□ □□□□□ □□ □□□ □□□□□□ □□ □□□□□□ □□ □□□□□ □□ | □□□□ और □□□□□□ □□ □□□ इस □□□□□□□□□□□□ □□ एक तरह □□ □□□ □□□□ □□ □□□□□ रॉबिन जेफ्री के अनुसार ''ब्रिटेन या अमेरिका में भी 1970 के दशक में समाचारपत्र स्थानीयता की ओर बढ़े पर वहाँ खपत में कमी आयी और टेलीविजन से जबरदस्त प्रतियोगिता के कारण वहाँ मामला ज्यादा ही उलझ गया। भारत में ऐसा नही हुआ''।[7]

हिन्दी में 'स्थानीयता' के प्रसार की शुरूआत 1980 से मानी जा सकती है। स्थानीयता के प्रसार के कारण दूर दराज में अखबारों को पहुंचने में आसानी हुई। लेकिन हिन्दी प्रिन्ट-मीडिया के प्रसार और 'स्थानीयता' को इतने सरलीकृत ढंग से समझना तथ्य के परे पहुंचने जैसा है।

पिछली दो शताब्दियों में समाचार पत्रों का विकास उदारवाद की देन माना जाता है, परन्तु इस उदारवाद की अभिव्यक्ति आर्थिक-स्वार्थो की सकरी गली के बिना सम्भव नही बैगडिकियन ने लिखा है'' अमेरिका में अखबार निकालना अभी भी पुरखा से प्राप्त विशेषाधिकार माना जाता है।''[8] आज भूमण्डलीकरण के दौर में जिस तरह से अखबारों का विलय हो रहा है उससे जनता और अखबार में मिशन, समाज के प्रति जवाब देही जैसी बाते मालिकों के स्वार्थ के आगे फीकी पड़ गयी है। भारत में अखबारों के प्रसार की चर्चा करते हुए रॉबिन जैफ्री ने लिखा कि''भारत में भी पैसा कमाने की खातिर ही अखबारों का इतने व्यापक रूप से प्रसार किया गया । समाचार पत्र मनुष्य के स्वाभाविक विचारों के आदान प्रदान की प्रबृत्तियों को बढ़ाने या उपयोगी सूचना से युक्त 'जनमत' का निर्माण करने के लिए पाठकों की संख्या में वृद्धि नही चाहते थे। असल में वे अपने पाठकों को एक ग्राहक या सम्भावित ग्राहक के रूप में देखते थे और जहां भी उन्हें ऐसी सम्भावना नजर आती थी वहाँ वे नए पाठक बनाने की दिशा में प्रयत्नशील रहते नजर आये। अखबार स्थानीय इसलिए हुए क्योंकि विज्ञापकों की कस्बों और गाँवों की

क्रयशक्ति का पता चला गया। वे अखबारों के सहारे उन तक पहुचना चाहते थे"।''[9] भारतीय भाषा के अखबारो ने गॉवों और कस्बों में बाजार की पहुंच और प्रभाव को बढ़ाया।

तकनीक और प्रिन्ट-मीडिया का प्रसार

तकनीकी सम्भाव्यता के बिना किसी भी तरह के बाजार का विस्तार सम्भव नही होता। प्रिन्ट-मीडिया के विस्तार और 'बाजार' के बिना भी यह सम्भव नही है, लेकिन बाजार के बिना भी यह सम्भव नही है। तकनीक हमेशा बाजार की सम्भावनाओं का अनुसरण भी करती है। भारत के औपनिवेशक दौर में छापेखाने के प्रसार को एक बडी घटना माना जाता है। लेकिन पारम्परिक प्रिन्ट-मीडिया में जैसे जैसे नई तकनीक का समावेश होता गया वैसे-वैसे भाषा और विचारों के एकीकरण की प्रक्रिया तेज हो जाती हैं। एंडरसन तो यहा तक मानते है कि ''मुद्रण-पूँजीवाद के मिलन से राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।''[10] इस प्रक्रिया में केवल सूचना का प्रसारण और संरक्षण ही शामिल नही है बल्कि मुद्रित-माध्यम ने लोगों की सोच की भी बदला। इससे मौखिक परम्परा की संस्कृतियों का खुलापन और सहजता नष्ट हो गयी। चूंकि मुद्रित माध्यम में अनुभव को वर्णित किया जा सकता है इसलिए इसके बेचने की सम्भावना भी बनी। आगे चलकर पूंजीवाद से प्रेरित मुद्रित माध्यम ने संचार की भाषा निर्मित की। राबिन जैफ्री कहते है कि ''समाचार पत्र ने दो काम किए। पहला इसमें स्थानीय भाषाओं के जरिए ही हो सकता था। बडे पैमाने पर उत्पादन होने के कारण इसकी खपत भी बडे पैमाने पर होनी चाहिए और जनता इसे तभी खरीद कर पढ़ेगी जब यह उसकी अपनी भाषा में होगी। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि पिछले दो दशकों के दौरान अग्रेंजी की तुलना में हिन्दी प्रिन्ट-मीडिया के पाठकों संख्या कई गुना तेजी से बढ़ी है।

भारत में 1990 के बाद आयी दूरसंचार क्रांन्ति ने प्रिन्ट-मीडिया के परिदश्य को पूरी तरह से बदल दिया। टेक्नोलॉजी समाज और भाषा को कितना बदल देती है, सूचना क्रान्ति की तकनीक से बेहतर उदाहरण शायद भी कोई हो। छोटे-छोटे शहरों से स्थानीय संस्करण सिर्फ इसलिए सम्भव हो सके कि दिल्ली, बम्बई, नागपूर, भोपाल, इन्दौर कानपुर से निकलने वाले अखबार के साथ छोटे-छोटे शहरों से वे स्थानीय खबरों के साथ सस्करण निकालने की तकलीक उपलब्ध थी। इससे एक ओर तो स्थानीयता की प्रबृत्तियों को बढ़ावा मिला वही अखबार की पहुंच दूरदराज तक हो गयी। 1990 से 2000 के बीच हिन्दी दैनिकों की प्रसार संख्या में इजाफा तो हुआ लेकिन बाजार की पहुंच उतनी गहरी नही हुई थी जितनी 2006 ईस्वी के बाद दिखाई पड़ती है। विज्ञापन की आय में अखबारों को एक मुनाफे वाले व्यवसाय में बदल दिया। टाईम्स ऑफ इण्डिया समूह ने 2000 ईस्वी के आसपास अपने व्यावसायिक रणनीति को बदलना शुरू किया और 2003 तक आते-आते समीर जैन के नेतृत्व में यह न सिर्फ सबसे मुनाफें वाला प्रकाशन समूह बन गया बल्कि सबसे अधिक मुनाफे वाला उद्योग-समूह भी बन गया। 1998 के हिन्दी समाचार पत्रों के ऑकड़े हमे बताते है कि संस्करणों की संख्या और प्रसार संख्या में सीधा सम्बन्ध है। इसे खबरों और समाचार पत्रों की स्थानीयता की प्रबृत्तियों का परिणाम माना जाए तो अतिषयोक्ति नही होगी इसी दूरसंचार क्रान्ति का दूसरा चेहरा था इन्टरनेट, मोबाइल और फोन और मोबाईल ने पारम्परिक पत्र लेखन की परम्परा को लगभग गायब सा कर दिया हैं और एस.एम.एस. के जरिए एक नयी तरह की भाषा बनती दिखती है। संचार की प्रणाली और दुनिया के बाजारों का इतना एकीकरण हो गया है कि दुनिया को भूमण्डलीकृत ग्राम की संज्ञा दी जाने लगी। यह एक अलग अध्ययन का विषम हो सकता है कि भीषण संचार के इस युग ने हमारी सोच और भाव कों कितना प्रभावित किया है।[11]

<u>प्रमुख हिन्दी दैनिक (एबीसी सदस्य) ओर प्रमुख प्रकाशन</u>

समाचार पत्र	प्रकाशन आरम्भ	मुख्यालय	अन्य प्रकाशन केन्द्र	प्रसार 1998 (संख्या हजार में)
आज	192	वाराणसी	पटना, इलाहाबाद, रांची, आगरा, लखनऊ, कानपुर, बरेली, गोरखपुर (धनबाद ग्वालियर)	571

अमर उजाला	1948	आगरा	बरेली, मेरठ, मुरादाबाद, कानपुर, इलाहाबाद, अलीगढ़, झांसी, देहरादून	450
दैनिक जागरण	1947	कानपुर	आगरा, बरेली, झांसी, बाराणसी, गोरखपुर, लखनऊ, मेरठ, मुरादाबाद, नई दिल्ली, देहरादून	701
दैनिक भास्कर	1958	भोपाल	जबलपुर, ग्वालियर, इन्दौर, बिलासपुर रायपुर, सता (झांसी, जयपुर)	478
देशबन्धु	1951	रायपुर	बिलासपुर, सतना (भोपाल, जबलपुर)	99
हिंदुस्तान	1936	नई दिल्ली (हिन्दुस्तान टाइम्स श्रंखला)	पटना	395
जनसत्ता	1983	मुबई (इंडियन एक्सप्रेस श्रंखला)	चंडीगढ़, कोलकता, नई दिल्ली	97
नवभारत टाइम्स	1950	बम्बई	नई दिल्ली	419
नवभारत	1938	नागपुर	जयपुर, जबलपुर, भोपाल, बिलासपुर, इन्दौर, ग्वालियर	465
पंजाब केसरी	1966	जालंधर	नई दिल्ली, अम्बाला	780
राष्ट्रीय सहारा	1992	लखनऊ	नई दिल्ली	

(श्रोत: नेशनल रीडरशिप स्टडी 2006)

नेशनल रीडरशिप स्टडी 2006 के बहाने हिन्दी प्रिन्टमीडिया के मंजर'

एनआरएस के 84373 लोगों के सैम्पल्स के साथ न सिर्फ भारत में बल्कि दुनिया में अपनी तरह के इस अनूठे सर्वेक्षण से अनेक रोचक तथ्य सामने आते है। यह सवेंक्षण हमे बताता है कि प्रिन्ट-मीडिया का हर पाठक औसतन 39 मिनट पढने में खर्च करता हैं।[12] यदि इसे भारत के 10 चोटी के अखबार के पाठकों संख्या (तकरीबन 15 करोड़) से गुणाकर दे तो हम पाएंगे कि प्रतिदिन भारत के 15 करोड लोग 585 करोड़ मिनट अखबार पढ़ने में लगाते है। इसके मायने यह है कि इन 585 करोड मिनट में पाठकों का जिस भाषा से सामना होता है वह प्रिन्ट-मीडिया की भाषा है। नतीजतन यह कहना बेमानी न होगा कि प्रिन्ट-मीडिया लोगों की भाषा-निर्मिति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि भारत के 10 प्रमुख अखबारों के 15 करोड़ पाठकों का जो बाजार है उसकी रूचि, सोच का प्रभाव भी प्रिन्ट-मीडिया की भाषा पर पडता होगा इसलिए प्रिन्ट-मीडिया कोई भी विवेचन बाजार और उत्पाद के आपसी रिश्ते को समझे बिना नही हो सकता।

वर्ष 2005 से 2006 के दौरान प्रिन्ट-मीडिया के पाठकों की संख्या 216 मिलियन से 222 मिलियन हो गयी जिसमें से 110 मिलियन ग्रामीण और 112 मिलियन शहरी पाठकों की संख्या हूँ1 लेकिन यहां यह उल्लेख प्रासंगिक होगा कि आज भी भारत की ग्रामीण क्षेत्र में 72.2% लोगों से हिन्दी प्रिन्ट-मीडिया का संवाद नही हो पाता। इसी 72.2 प्रतिशत बाजार में प्रिन्ट-मीडिया के विस्तार की असीमित सम्भावनाएं है। हिन्दी क्षेत्र के बडे समाचार पत्रों ने पिछले वर्ष में इसी बाजार को खंगालते हुए अपना विस्तार किया है। इस विस्तार में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका स्थानीयता की रही है। संचार-तकनीक का इस्तेमाल करते हुए दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण व अमर-उजाला जैसे हिन्दी अखबारों ने लगभग जिलेवार संस्करण निकालना शुरू कर दिया हैं । स्थानीयता की इस प्रबृत्तियों के कारण नए पाठकों की संख्या में इजाफा हुआ है। बाजार के इस नए व्याकरण की अहमियत बढ़ी है। स्थानीय खबरों का चयन और उनकी भाषा बाजार की मांग की अनुरूप ढल गए। अध्ययन यह बताते है कि स्थानीय स्टिंगरों में सामग्री और भाषा की दृष्टि से पेशेवर-दक्षता का अभाव होता है।[13] और स्टिंगर अपनी खबरें को सनसनीखेज बनाने का प्रयास करते है।

इस आपाधापी में अखबार तथ्य, सत्य और विवेचना करने के बजाय उस बाजार का पीछा कर रहे होते हैं जो सिर्फ सनसनीखेज खबरों का इन्तजार कर रहा होता है। आइए जरा देखे कि पिछले डेढ़ दशक के हिन्दी प्रिन्ट-मीडिया के प्रचार में अहम् भूमिका निभाने वाले स्थानीय संस्करणो की भूमिका क्या रही है।

दरअसल स्थानीय संस्करण में स्थानीय ख़बरों का एक अलग सप्लीमेंट होता है जिसमें तमाम खबरों के साथ अपराध की खबरों की प्रचुरता होती है । पुराने जमाने के अखबारों में खबरों की रिपोर्टिंग के साथ सत्य, तथ्य और 'नजरिए' को महत्वपूर्ण माना जाता था लेकिन इन स्थानीय संस्करणों में प्रायः इसका अभाव होता है, क्योंकि ये बातें अखबार की नीति का हिस्सा नहीं है । इन खबरों में स्त्रियों से जुड़ी खबरों की तह में जाने के बजाय, सनसनीखेज बनाने का आग्रह हावी होता है। परिणामस्वरूप पुरूष द्वारा बलात्कार की खबर में प्रायः औरत की इज्जत लुट जाती है और पुरूष अनछुआ रह जाता है। और जब लड़कें और लड़किया घर छोड़ जाते है तब 'लड़की, लड़के के साथ भागती है' अखबार कम से कम इसी भाषा मे खबर देते है। ऐसी घटनाओं मे पुलिस जब कोई केस दर्ज करती है तब अखबारों की सुर्खिया **'लडकी को बरामद कर रही होती है'**। जेंडर पर आधारित यह पूर्वाग्रह प्रिन्ट-मीडिया की भाषा तक ही सीमित नहीं है बल्कि ऐसी पूर्वाग्रही भाषा सिनेमा, टीवी, साहित्य जैसे तमाम माध्यमों में दिखाई देता ।

<u>प्रिन्ट-मीडिया के पाठक</u>

नेशनल रीडरशिप स्टडी 2005-2006 के मायने

शहरी एवं ग्रामीण	**2006**		**शहरी एवं ग्रामीण**	**2005**	
दैनिक जागरण	21165	1	दैनिक जागरण	21244	1
दैनिक भास्कर	20958	2	दैनिक भास्कर	17379	2
इनाडू	13805	3	इनाडू	11350	3
लोकमत	10856	4	लोकमत	8820	7
अमर उजाला	10847	5	अमर उजाला	10469	5
हिन्दुस्तान	10437	6	डेली थान्ती	9445	6
डेली थान्ती	10389	7	हिन्दुस्तान	10557	4
दिनकरन	9639	8	दिनकरन	1485	39
राजस्थान पत्रिका	9391	9	राजस्थान पत्रिका	8651	8
मलयाला मनोरमा	8409	10	मलयाला मनोरमा	7985	10
टाइम्स ऑफ इण्डिया	7502	11	टाइम्स ऑफ इण्डिया	8092	9
मातृ भूमि	7415	12	मातृ भूमि	6412	13

(श्रोत: नेशनल रीडरशिप स्टडी 2006)

नेशनल रीडरशिप स्टडी के पिछले दो सालो के सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि दैनिक भास्कर और 'लोकमत' जैसे अखबारों के पाठको में तेजी से वृद्धि हुई है इसकी प्रमुख वजह इन अखबारों के अधिक संस्करणों की संख्या के साथ इनकी सामग्री को भी माना जा सकता है। आलोक श्रीवास्तव ने पिछले 10 सालो में अखबारो के प्रसार के कारणों पर विचार करते हुए कहा कि ''आज देश भर के अखबार मनोरंजन उद्योग को पूरी तरह से समर्पित है"[14] अखबारों की सामग्री का एक बड़ा हिस्सा मनोरंजन उद्योग के प्रचार पर आधारित होता है। कई बार अखबार मनोंरजन उद्योग की इतनी तफसील से खबरे छापते है। मानो वे फिल्म, टीवी जैसे मनोरंजन उद्योग के जनसम्पर्क प्रचारक हो।

यह स्थिति आजादी के बाद के वर्षो में नही थी राजकिशोर कहते हैं कि ''आजादी के बाद के वर्षो में जिन पत्रों की घाक बनी वे मूलतः दिल्ली व बम्बई से निकलने वाले पत्र थे हिन्दी पत्रकारिता का क्षेत्र बहुत ही शानदार है लेकिन वह मुख्यतः विचारों की पत्रकारिता थी'[15]' यही कारण है कि आजादी के बाद अखबार अपने मालिको के नाम से नही बल्कि सम्पादकों के नाम से जाने जाते थे। जैसे-जैसे प्रिन्टमीडिया पर बाजारीकरण हावी होने लगा वैसे वैसे अखबार एक ऐसे प्राडक्ट में बदल गया जिसका अन्तिम लक्ष्य उपभोक्ता था। समाज को सूचना देने, जैसी बात हाशिए पर चली गयी। प्रिन्ट-मीडिया की इसी प्रबृति पर मार्मिक टिप्पणी करते हुए रामशरण जोशी ने कहा कि जब मीडिया प्रत्येक कवरेज का मास प्रोडक्शन करने लगता है। वह प्रत्येक घटना को प्राडक्ट एव पैकेजिंग की शक्ल में देखने लगता है। और उसी ढंग से सम्प्रेषित करता है। ऐसे मीडिया का लक्ष्य ग्राहक होते हैं, लोग नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि अखबार के अन्दर की दुनिया क्या होती है। यानि घटना से खबर छपने तक का फासला कैसे तय होता है। और इसमें माषा का प्रश्न कैसे जुड़ जाता है। राबिन जैफ्री कहते हैं कि ''पूरे भारत में अखबार मालिकों की सोच और अनुभव का भी पत्रकारों के प्रशिक्षण पर प्रभाव पड़ा और फलस्वरूप पत्रकारों का प्रशिक्षण अलग-अलग ढंग से हुआ। कुछ अखबार मालिको का यह मानना है कि व्यवस्थित प्रशिक्षण और अच्छे उत्पादन में चोली दामन का साथ है। उनका यह भी मानना है कि यदि इसमें ज्यादा लागत लगती है तो इससे फायदा भी होता है।''[16] हिन्दी और गुजराती समाचार पत्र प्रशिक्षण देने के पक्ष मे प्रायः नहीं दिखते परिणाम स्वरूप अखबार की सामग्री में विश्लेषण व नजरिए के बजाय मनोरंजन का दबदबा होता है । भाषा में लैगिक पूर्वग्रह की अभिव्यक्त न हो, यह सजगता लगभग नामौजूद होती है। इसके उलट खबरों को सनसनीखेज बनाने के चक्कर में भाषा में लैंगिक पूर्वाग्रह की अभिव्यक्ति होती है।

पिछले दशक में अमर उजाला दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर और हिन्दुस्तान जैसे हिन्दी अखबारो का सर्कुलेशन और संस्करण तेजी से बढ़ा है, ऐसे में अखबार जैसे उत्पाद के साथ मुनाफा एक अपरिहार्य तत्व हो गया है। इस मुनाफे के लिए विज्ञापन की आय और अखबार छापने का अर्थशास्त्र महत्वपूर्ण हो जाता है। इसी आर्थशास्त्र की मांग यह होती है कि वेतन जैसे मद पर खर्च कम से कम हो। परिणाम यह होता है कि, स्थानीय कस्बाई संस्करणो में काम कर रहे रिर्पोटर उतने पेशेवर नहीं होते जितनी कि व्यवसायिक माँग होती है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि उनमें भाषा के स्तर पर सजगता नामौजूद सी होती है। कन्नौज एटा, शिवपुरी, मुरैना जैसी छोटी जगहो से निकलने वाले संस्करण के रिपोर्टर स्थानीय होते है। जिनका वेतन बेहद कम होता है यही कारण है कि इस पेशे में बेहतरीन प्रतिभा का अभाव होता है। इसके अलावा अखबार मालिको की सोच यह नहीं होती कि इन रिर्पोटरो या स्टिगंर की भाषा या कन्टेन्ट कौशल को बढ़ाने के लिए प्रशिक्षित किया जाय। इसके उलट जब अखबारों का विकेन्द्रीकरण नहीं हुआ था तब अखबार प्रायः बड़े शहरों से निकलते थे जहाँ प्रशिक्षित और पेंशवर प्रतिभाओं का अभाव नही था। □□□□□□□□□□□□□□□ □□ □□□ □□ □□□□ जब □□□□□□□□□ □□□□□, □□□□□□□□□□□ □□□□□, □□□□□ □□□□□□□□ एस □□ □□□□, □□□□□□□ □□□□□ □□□□ □□□□□□□ □□□□□□ □□□□□□□□-□□□□□□ □□ □□□□ □□ तब □□□□□□ और □□□□ □□ □□□□ □□□□□ □□□□□ □□ □□□□□ □□ इस □□□ □□□ □□□□ □□□□□□ □□□□□□ □□ □□□ □□ ।

सन्दर्भ सूची

[1] फ्रेंचेस्का ओरसिनी हिन्दी पबिलक स्फीयर-दीवान-ए-सराय- मीडिया विमर्श, सी एम डी एस, वाणी प्रकाशनए पृष्ठ 24

[2] रिपोर्ट ऑन द वर्किंग आफ द सिस्टम आफ गवर्नमेंट आफउ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, 1921-1928, सुपरिन्टेन्डेन्ट आफ गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद यूपीए 1928, पृष्ठ 239-45.

[3] स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट, 1940, होम, पालिटिक्ल, (काफिडेन्शियल) फाईल सं. 33ध्2ध्41- पोलिटिक्ल) जनवरी 1941

[4] अविनाश कुमार - प्रिन्ट मीडिया के बदलते परिदृश्य (1900-1940) सराय मीडिया विमर्श, पृष्ठ 1, सी.एस.डी.एस. वाणी, नयी दिल्ली

[5] फेंचेंस्का ओरसिनी- द पब्लिक स्फीयर आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

[6] सेलिंग हैरिसन - इण्डिया द मोस्ट डेंजटस डिकेड्स (मद्रास, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृ 85

[7] राबिन जेफ्री, भारत की समचार पत्र क्रान्ति, भारतीय जन सचार संस्थान, नयी दिल्ली, पृष्ठ 71

[8] बैंगडिकियन - द इन्फारमेशन मशीन:देयर इम्पैक्ट ऑन में एंड मीडिया ,न्यूयॉर्क:हार्पर एंड रो 1971, पृष्ठ 116

[9] राबिन जैफ्री - भारत की समाचार पत्र क्रान्ति - 11 एमएल, पृष्ठ 77

[10] मैकलुहने - मुटनबर्ग गैलेक्सी, पृष्ठ 258

[11] राबिन जैफ्री- भारत की समाचार पत्र क्रान्ति पृष्ठ- 5 भारतीय जन संचार संस्थान नयी दिल्ली

[12] नेशनल रीडरशिप सर्वे 2006-नेशनल रीडर स्टडीज काउंसिल नई दिल्ली 2007

[13] नेशनल रीडरशिप सर्वे 2006-नेशनल रीडर स्टडीज काउंसिल नई दिल्ली 2007

[14] आलोक श्रीवास्तव-अखबार नामा - पृष्ठ 11, संवाद प्रकाशन-मुम्बई- 2004

[15] राजकिशोर मीडिया और बाजार वाद, पृष्ट 40 राधाकृष्ण नयी दिली 2004

[16] राविन जैफ्री भारत की समाचार पत्र क्रान्ति पृष्ठ 163 भारतीय जनसंचार संस्थान नयी दिल्ली 2004

Dr. Durga Prasad Singh
Associate Professor (Hindi)
Government Bangur P.G. College PALI, Rajasthan
(M.D.S. University Ajmer)
Cell : +91 8058000414
Email: doctordpsingh@gmail.com